ISSN : 2347-7660 (Print) | ISSN : 2454-1818 (Online)

समकालीन सन्दर्भों में अंधेर नगरी की प्रासंगिकता एवं उपादेयता

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव,
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ (उ.प्र.)

'अंधेर नगरी' भारतेन्दु के नाटकों में सबसे अधिक चर्चित नाटक है । इस नाटक की लोकप्रियता का प्रभाव 130 वर्षों के बाद भी जनमानस की कहावतों में जीवित है। आज भी जब कोई अन्याय, असमानता और भ्रष्टाचार से त्रस्त होता है तो कहता है 'अंधेर नगरी चौपट राजा। टके सेर भाजी टके सेर खाजा।' भारतेन्दु ने 'अंधेर नगरी' प्रहसन यूँ तो बनारस नेशनल थियेटर के लिये 1881 में लिखा था जो लिखने वाले दिन ही दशाश्वमेघ घाट पर अभिनीत भी हुआ था। कहा जाता है कि भारतेन्दु ने यह नाटक बिहार प्रदेश के किसी अन्यायी और घमन्डी जमीदार को सुधारने के लिए लिखा था जो अपनी सरल भाषा और तीखे व्यंग्य के कारण एक कालजयी प्रहसन सिद्ध हुआ। यह नाटक भारतेन्दु की व्यंग्य क्षमता का प्रमाण है। एक लोकप्रिय प्रहसन जिसका राजनीतिक अर्थ समय के साथ हर दौर में प्रासंगिक है। राज्य कुव्यवस्था, भ्रष्टाचार, जातिवाद और शासक वर्ग के दंभ से उत्पन्न अराजकता पर 'अंधेर नगरी' तीखा व्यंग्य नाटक है। 'अंधेर नगरी' जैसे नाटक केवल विचारधारा से ही संभव नही होते हैं। शिल्प की गहराई वातावरण की विशेष समझ और कथानक पर मजबूत पकड़ का परिणाम होते हैं। प्रहसन दिल की गहराईयों को तभी छू सकता है, जब उसके पात्र और सम्वाद सामाजिक वातावरण के यथार्थ को अभिव्यक्त करते हों। 'अंधेर नगरी' नाटक को रोचक ओर विनोदपूर्ण बनाने के लिए भारतेन्दु ने उसका कथानक तो सीधा सादा रखा परन्तु व्यंग्य को तीखा बनाने के लिए प्रारम्भ से ही रोचकता का विशेष ध्यान रखा है। पहले दृश्य में एक महन्त अपने दो चेलों के साथ नगर में राम भजन गाते हुए प्रवेश करता है। महन्त के शिष्यों के नाम गोबरधन दास और नारायण दास है। महन्त अपने शिष्य नारायण दास को निर्देश देता है और कहता है, 'यह नगर दूर से तो बड़ा सुन्दर दिखाई देता हैं' 'दूर से बड़ा सुन्दर' कहना महन्त की परिपक्वता और अनुभव को दर्शाता है कि प्रथम दृष्टि में ही किसी व्यक्ति अथवा वस्तु पर अपना मत नही व्यक्त करना चाहिए। महन्त दोनों शिष्यों को अलग–अलग दिशाओं में भिक्षा लाने के लिए भेजता है और साथ ही दोनों शिष्यों को लोभ न करने की शिक्षा भी देता है। 'लोभ पाप का मूल है, लोभ मिटावत मान'।

'अंधेर नगरी' भारतेन्दु के नाटकों में सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ। इस नाटक की लोकप्रियता का प्रभाव 130 वर्षों के बाद भी जनमानस की कहावतों में जीवित है। आज भी जब कोई अन्याय, असमानता और भ्रष्टाचा से त्रस्त होता है तो कहता है 'अंधेर नगरी चौपट राजा। टके सेर भाजी टके सेर खाजा।' भारतेन्दु ने 'अंधेर नगरी' प्रहसन यूँ तो बनारस नेशनल थियेटर के लिये 1881 में लिखा था जो लिखने वाले दिन ही दशाश्वमेघ घाट पर अभिनीत भी हुआ था। कहा जाता है कि भारतेन्दु ने यह नाटक बिहार प्रदेश के किसी अन्यायी और घमन्डी जमीदार को सुधारने के लिए लिखा था जो अपनी सरल भाषा और तीखे व्यंग्य के कारण एक कालजयी प्रहसन सिद्ध हुआ। यह नाटक भारतेन्दु की व्यंग्य क्षमता का प्रमाण है। एक लोकप्रिय प्रहसन जिसका राजनीतिक अर्थ समय के साथ हर दौर में

प्रासंगिक है। राज्य कुव्यवस्था, भ्रष्टाचार, जातिवाद और शासक वर्ग के दंभ से उत्पन्न अराजकता पर 'अंधेर नगरी' तीखा व्यंग्य नाटक है। 'अंधेर नगरी' जैसे नाटक केवल विचारधारा से ही संभव नही होते हैं। शिल्प की गहराई वातावरण की विशेष समझ और कथानक पर मजबूत पकड़ का परिणाम होते हैं। प्रहसन दिल की गहराईयों को तभी छू सकता है, जब उसके पात्र और सम्वाद सामाजिक वातावरण के यथार्थ को अभिव्यक्त करते हों। 'अंधेर नगरी' नाटक को रोचक ओर विनोदपूर्ण बनाने के लिए भारतेन्दु ने उसका कथानक तो सीधा सादा रखा परन्तु व्यंग्य को तीखा बनाने के लिए प्रारम्भ से ही रोचकता का विशेष ध्यान रखा है। पहले दृश्य में एक महन्त अपने दो चेलों के साथ नगर में राम भजन गाते हुए प्रवेश करता है। महन्त के शिष्यों के नाम गोबरधन दास और नारायण दास है। महन्त अपने शिष्य नारायण दास को निर्देश देता है और कहता है, 'यह नगर दूर से तो बड़ा सुन्दर दिखाई देता हैं' 'दूर से बड़ा सुन्दर' कहना महन्त की परिपक्वता और अनुभव को दर्शाता है कि प्रथम दृष्टि में ही किसी व्यक्ति अथवा वस्तु पर अपना मत नही व्यक्त करना चाहिए। महन्त दोनों शिष्यों को अलग–अलग दिशाओं में भिक्षा लाने के लिए भेजता है और साथ ही दोनों शिष्यों को लोभ न करने की शिक्षा भी देता है। 'लोभ पाप का मूल है, लोभ मिटावत मान'।

अंधेर नगरी के दूसरे अंक में बाजार का दृश्य हैं बाजार में सब खाने की दुकानें हैं। कबाब वाला, चने जोर गरम वाला, नारंगी वाला, हलवाई, कुंजड़िन, मुगल मेवे वाला, पाचक वाला, मछली वाला, बनिया और जात वाला (ब्राहमण) बाजार में आवश्यकता की हर वस्तु बिक रही है। और हर सामान बेचने वाला अपने सामान की विशेषताओं का बखान अपनी भाषा में कर रहा है। साधारण व्यक्ति किस भाषा में बात करता है। भारतेन्दु उसी जन भाषा का प्रयोग सटीक शब्दों और उपमाओं द्वारा किया जो भारतेन्दु की साधारण जन की भाषा पर अधिकार शक्ति को दर्शाता है। बाजार की विशेषता है कि 'हर चीज का मूल्य टके सेर है।'

अंधेर नगरी चौपट राजा। टके सेर भाजी टके सेर खाजा।।

कबाब वाला अपने कबाबों को गरम, चोरासी मसाले वाला और चटपटा बता रहा है। दाम टके सेर। चना जोर गरम बेचने वाला घासीराम अपने चनों की विशेषता बताता है कि उसका चना तौकी और मैना नाम की प्रसिद्ध वैश्याऐं भी खाती हें। हर सामान बेचने वाले की बोली भिन्न और खास है। जिसमें ग्राहकों के लिए प्रलोभन ओर प्रचार भी है। दाम वही टके सेर। चना वाले के संवादों में व्यंग्य और सरल हास परिहास भी है और अर्थ पूर्ण शब्द बाण भी है।

चना हाकिम सब जो खाते।

सब पर दूना टिकस लगाते।।

चने वाले की बोलों में नौकरशाही की मनमानी और हठधर्मी साफ झलकती है। चने का भाव भी टके सेर है। नारंगी वाला नारंगी को अलग अलग मशहूर जगहों का नाम लेकर उनके स्वाद की विशेषता केवड़ा, नीबू, मीठा नीबू सुन्दर रंग की आवज लगाता है। नारंगी वाले की भाषा को कुछ विद्वानों ने अश्लील बताया। परन्तु भारतेन्दु ने बाजार के दृश्य में हाट बाजार की बोली को ही पात्रों से बुलवाया है। जैसा की हर दुकानदार अपने माल को बेचने के लिए बोलता है। यह सरलता और सजीवता ही भारतेनदु के लेखन की विशेषता हैं हलवाई अपनी मिठाईयों, जलेबी, इमरती, लड्डू, गुलाब जामुन, खुरमा, बूँदी, बरफी की तारीफ करता है। भूखें लड्डू के लिए 'जो खय सो भी पछताय, जो न खाय सो भी पछताय' की आवाज लगा रहा है। साथ ही समोसा, कचौड़ी, दालमोठ, रेवड़ी और पापड़ का वर्णन करता हुआ कहता है। 'खाजा ले जा खाजा। टके सेर खाजा।।'

कुंजड़िन सारी सब्जियों के नाम पुकारने के साथ कहती हैं जैसे काजी वैसे पाजी। रैयत राजी टके सेर भाजी। कुंजड़िन के मुख से 'हिन्दुस्तां का मेवा फूट और बैर' कहलवाकर भारतेन्दु ने चुभने वाला व्यंग्य किया है जो फलों के नाम को आधार बनाकर तत्कालीन भारतीय समाज की कमजोरी और पतन के कारण को इंगित करता है। मुगल अपना मेवा भी टके सेर बेच रहा है। सबसे तीखा, आक्रामक और अंग्रेजी राजतन्त्र की पोल खोलने वाला व्यंग्य पाचक वाले (चूरन वाले) का है–

हिन्दू चूरन इसका नाम। विलायत पूरन इसका काम।

चूरन जब से हिन्द में आया। इसका धन बल सभी घटाया।

चूरन अमले सब जो खावे। दूनी रिशवत तुरंत पचावै।

चूरन पुलिस वाले खाते। सब कानून हजम कर जाते।

चूरन का भाव भी टके सेर है। मछली भी टके सेर बिक रही है। आटा, चावल और चीनी सभी का दाम टके सेर है। जात वाला (ब्राहमण) अपनी जात को टके सेर बेच रहा है। टके में ब्राहमण को धोबी और धोबी को ब्राहमण टके में झूठ को सच, ब्राहमण को मुसलमान और क्रिस्तान (ईसाई) बनाने को कहता है। टके में धर्म, प्रतिष्ठा बेचने, झूठी गवाही देने, पाप को पुण्य बताने, कुल, मर्यादा, वेष, धर्म सब टके सेर में बिक रहे हैं। सारे पदार्थ व्यक्तित्व, समाज का हर वर्ग, मूल्य, व्यवस्थाएं सब एक भाव बिक रहे हैं। भारतेन्दु ने लालची और विवेक शूनय समाज, गिरते मानवीय मूलय और बुद्धिहीन शासक वर्ग का चित्रण हास परिहास के रंग में सुन्दर और प्रभावी ढ़ंग से किया है जो उनकी योग्यता, क्षमता और दूर दर्शिता का प्रमाण है। महन्त का शिष्य इस नगर में ही रहने का आग्रह करता है। जबकि महन्त अन्धेर नगरी में एक क्षण भी रुकने को तैयार नही होता। महन्त कहता है कि–

सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास,

ऐसे देस कुदेस में, कवहुँ न कीजे वास,

बसिये ऐसे देस नहिं, कनक वृष्टि जो होय

रहिये तो दुख पाइये, प्रान दीजिए रोय।

चेला गोबरधन दास अंधेर नगरी में ही रुक जाता है। महन्त उसे संकट में स्मरण करने का आदेश दे कर दूसरे चेले नारायण दास के साथ अन्यत्र चले जाते हैं।

नाटक के चौथे अंक में राज सभा का दृश्य है। भारतेन्दु ने हास परिहास के साथ ही राजा के निकम्मेपन, आलस, भोग विलास और उसकी बुद्धिहीनता का चित्रण किया है। जो पान खाने की आवाज को सुपनखा का आना समझकर भागने लगता है।राजा का मन्त्री इसका दोष तमोली पर लगाता है और बुद्धि विवेकहीन राजा तमोली को दो सौ कोड़े लगाने का हुक्म देता है। दूसरे दृश्य में फरियादी का आगमन होता है जो बनिये की दीवार गिरने से अपनी बकरी के मरने पर न्याय माँगता हैं राजा पहले दीवार को पकड़ लाने का हुक्म देता है। भारतेन्दु राजा की अज्ञानता और न्याय के प्रति लापरवाही को तीखा व्यंग्य बना देते हैं जिससे नाटक देखने या पढ़ने वाला बरबस ही हँसने लगता है। राज फिर कल्लू बनिये को उसके स्वयं को निरपराध बताने और कारीगर पर कमजोर दीवार बनाने का इल्ज़ाम लगाने पर कारीगर से चूने वाले पर फिर भिश्ती , कसाई, गड़रिये ओर अन्त में शहर कोतवाल पर आरोप लगाता है। जो न्याय प्रक्रिया के खोखले पन पर कटाक्ष है। राजा शहर कोतवाल को फाँसी पर लटकाने का दण्ड देता है। पाँचवे अंक में अराजकता और अन्याय पर व्यंग्य हैं राजा के सिपाही महन्त के चेले को पकड़ लेते हैं क्योंकि उसकी गर्दन मोटी है और फाँसी का फँदा कोतवाल के गले से बड़ा है। औचित्य पर इससे

प्रखर व्यंग्य और क्या हो सकता हैं। चेले की करुण पुकार पर महन्त का आगमन होता है और महन्त अपने चेले गोबरधन दास को एक युक्ति बताते हैं ओर गुरू शिष्य दोनों फाँसी पर चढ़ने की ज़िद करते हैं। राजा के पूछने पर महन्त का यह संवाद कि आज मरने वाला सीधा स्वर्ग जायेगा पर सभी फाँसी पर चढ़ने को अपने को प्रस्तुत करते हैं। भारतेन्दु ने अच्छे बुरे सारे कर्मों के लिए राजा मन्त्री और सारे लोगों के आग्रह को स्वार्थ लिप्तता को उजागर किया है। अन्त में राजा स्वयं फाँसी के तख्ते पर चढ़ जाता है और स्वर्ग जाने की लालच में फाँसी लगा लेता है। अंधेर नगरी नाटक पर श्री सत्य प्रकाश मिश्र का यह कथन कितना प्रासांगिक हैं। ''यह नाटक इस अर्थ से समकालीन नाटक है कि यह किसी भी समय के अनाचार, भ्रष्टाचार, विवेक शून्यता और मनमाने पन पर रोशनी डालता है। इस प्रहसन में व्यंग्य के माध्यम से जो कुछ भी कहा गया है, उतना ही अधिक कहने की गुंजाइश भी है। रंग कर्मी और कुशल निर्देशक इस नाटक में बहुत कुछ समावेश करने की क्षमता का इस्तेमाल करके अपने समय की समस्याओं को रेखांकित करते हुए उसका उत्तर खोज सकते हैं।''

सामाजिक व्यभिचार में भ्रष्टाचार सदैव देश को खोखला बनाये रहा है। भारतेन्दु जी ने बड़े साहस और जिन्दादिली से कुत्सित वृत्तियों पर नज़र डाली है और उस उखाड़ फेंकने का भरपूर प्रयास किया है। भ्रष्टाचार की जड़े हर देश को खोखला करती रही है। भारतेन्दु के समय भी रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार चरमसीमा पर था। देश का सदैव दुर्भाग्य रहा है इस भ्रष्टचार के रंग में रंगकर छोटा–बड़ा हर वर्ग का मनुष्य सदैव गद्दारी करता रहा है। भारतेन्दु जी न अंधेर नगरी नाटक के माध्यम से चरन से तीखा व्यंग्य करते हुए इस व्यापार में लगे लोगों की जमकर बखिया ऊधेड़ी है– ''चूरन साहेब लोग जो खाता, सारा हिन्द हज़म कर जाता, चूरन पुलिस वाले खाते। सब कानून हज़म कर जाते''[1] कहकर सरकारी अमले को भी गिन–गिन कर सुनाई है। सरकारी तन्त्र का आतंक और भ्रष्टाचार स्पष्ट रूप में विकराल रूप धारण करने लगा था।

अमलातंत्र का शोषण और तानाशाही गला घोंटने लगी थी। देशी विदेशी सब लूट–खसोट में लगे हुए थे। विवेकहीनता अराजकता, घूँसखोरी से शोषणपूर्ण नीति का जमकर खुलासा किया। भारतेन्दु की इसी विशेषता से प्रभावित होकर डॉ० बच्चन सिंह ने लिखा ''अँधेर नगरी के घासीराम और पाचक वाला चूरन बेचने के बहाने हाकिमों के द्विगुणित कर लगाने, अमलों के घूँस लेने, महाजनों के अत्यधिक लाभ उठाने, अग्रेजों के सारे भारत को उदरस्थ कर जाने, पुलिस के अनियमित कार्य करने की जो चर्चा करते हैं। उस समय के अधिकारों और धनी वर्ग के मनोवृत्ति परिलक्षित होती है। इस तरह से लूट खसोट से आक्रान्त राज्यों में सामान्य जनता को क्या सुख प्राप्त हो सकता है।'' [2]

भारतेन्दु का सम्पूर्ण साहित्य बहुमुखी था। साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में आप आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक के रूप में सामने आए। आपका बहुमुखी व्यक्तित्व ही परवर्ती हिन्दी साहित्य में अनेक रूपों में विकसित और परिवर्द्धित हुआ। आप वास्तव में अपने आप में एक युग थे, संस्था थे। आपने स्वयं तो हिन्दी साहित्य की अतुलनीय और शाश्वत सेवा की ही, अनेक साहित्यकारों और साहित्य संस्थाओं को जन्म दिया, उन्हें प्रोत्साहन देकर विकसित करने का प्रयास किया। आपने अतीत से प्रेरणा लीं, वर्तमान को गति दी और भविष्य के स्वर्णिम सपने देखें। अपने इन्हीं सद्गुणों से आप युग प्रवर्तक बन गए। हिन्दी संसार आपकी सेवा का ऋण नहीं चुका सकता।

अँग्रेजी राज्य के अमन–कानून और आन्तरिक और बाह्य शांति की व्याख्या इस प्रकार है –

''ध्र्म अध्र्म एक दरसाई । राजा करे सो न्याय सदाई ।

भीतर स्वाहा बाहर सादे । राज करहिं अमले अरू प्यादे ।

अंधधुंध मच्यौ सब देसा । मानहु राजा रहत बिदेसा ।।''

इसमें सन्देह ही क्या था कि राजा विदेश रहता था । न्याय और व्यवस्था के नाम अंधधुँधी चल रही थी ।

चूरनेवाले के लटके ने 'अंध्रेनगरी' की सामयिकता को और भी उभार दिया है । उसका चूरन खाकर अमले दूनी रिश्वत लेते हैं, पुलिस वाले कानून हजम कर जाते हैं और साहब लोग तो सारा हिन्द ही हजम कर गए हैं ।

'अंध्रेनगरी' के राजा का वही अन्त होता है जो होना चाहिए, ''राजा को लोग टिकटी पर खड़ा करते हैं ।'' । इस नाटक के व्यंग्य द्वारा जनता के तीव्र असंतोष को प्रकट होने का मौका मिला, जिसे वह शत्राु समझती थी उसका यह अन्त देखकर उसे हर्ष हुआ । इस प्रहसन की सजीवता का कारण उसकी साम्राज्य–विरोधी भावना है । नाटक देखने और पढ़ने वाले अन्त में यही कहते हैं, अंध्रेनगरी के चौपट राजाओं का यही हाल होना चाहिए !

अंधेर नगरी कथानक के आधार पर जब अंधेर नगरी के राजा को बकरी के मारने वाला तथाकथित दोषी नहीं मिलता तो वह क्रमशः दीवार को दीवार के मालिक को, कारीगर को, मजदूर को, मसक बनाने वाले को, कसाई को सभी को यहॉ कि दीवार पकड़ लाने का भी आदेश देता हैं और जब न्यायोचित बात सिरे नहीं चढ़ती तो गोबर्धन दास बेकसूरवार को ही फॉसी का दण्ड दिये जाने का आदेश होता है। क्योंकि राजा चौपट न्याय के अनुसार–

बकरी मारने के अपराध में किसी न किसी को तो सजा जरूर होनी है नहीं तो न्याय न होगा।[3]

अंधेर नगरी के दूसरे अंक में बाजार का दृश्य हैं बाजार में सब खाने की दुकानें हैं। कबाब वाला, चने जोर गरम वाला, नारंगी वाला, हलवाई, कुंजड़िन, मुगल मेवे वाला, पाचक वाला, मछली वाला, बनिया और जात वाला (ब्राहमण) बाजार में आवश्यकता की हर वस्तु बिक रही है। और हर सामान बेचने वाला अपने सामान की विशेषताओं का बखान अपनी भाषा में कर रहा है। साधारण व्यक्ति किस भाषा में बात करता है। भारतेन्दु उसी जन भाषा का प्रयोग सटीक शब्दों और उपमाओं द्वारा किया जो भारतेन्दु की साधारण जन की भाषा पर अधिकार शक्ति को दर्शाता है। बाजार की विशेषता है कि 'हर चीज का मूल्य टके सेर है।'

अंधेर नगरी चौपट राजा। टके सेर भाजी टके सेर खाजा।।

कबाब वाला अपने कबाबों को गरम, चोरासी मसाले वाला और चटपटा बता रहा है। दाम टके सेर। चना जोर गरम बेचने वाला घासीराम अपने चनों की विशेषता बताता है कि उसका चना तौकी और मैना नाम की प्रसिद्ध वैश्याऐं भी खाती हें। हर सामान बेचने वाले की बोली भिन्न और खास है। जिसमें ग्राहकों के लिए प्रलोभन ओर प्रचार भी है। दाम वही टके सेर। चना वाले के संवादों में व्यंग्य और सरल हास परिहास भी है और अर्थ पूर्ण शब्द बाण भी है।

चना हाकिम सब जो खाते।

सब पर दूना टिकस लगाते।।

चने वाले की बोलों में नौकरशाही की मनमानी और हठधर्मी साफ झलकती है। चने का भाव भी टके सेर है। नारंगी वाला नारंगी को अलग अलग मशहूर जगहों का नाम लेकर उनके स्वाद की विशेषता केवड़ा, नीबू, मीठा नीबू सुन्दर रंग की

आवज लगाता है। नारंगी वाले की भाषा को कुछ विद्वानों ने अश्लील बताया। परन्तु भारतेन्दु ने बाजार के दृश्य में हाट बाजार की बोली को ही पात्रों से बुलवाया है। जैसा की हर दुकानदार अपने माल को बेचने के लिए बोलता है। यह सरलता और सजीवता ही भारतेनदु के लेखन की विशेषता हैं हलवाई अपनी मिठाईयों, जलेबी, इमरती, लड्डू, गुलाब जामुन, खुरमा, बूँदी, बरफी की तारीफ करता है। भूखें लड्डू के लिए 'जो खय सो भी पछताय, जो न खाय सो भी पछताय' की आवाज लगा रहा है। साथ ही समोसा, कचौड़ी, दालमोठ, रेवड़ी और पापड़ का वर्णन करता हुआ कहता है। 'खाजा ले जा खाजा। टके सेर खाजा।।'

कुंजड़िन सारी सब्जियों के नाम पुकारने के साथ कहती हैं जैसे काजी वैसे पाजी। रैयत राजी टके सेर भाजी। कुंजड़िन के मुख से 'हिन्दुस्तां का मेवा फूट और बैर' कहलवाकर भारतेन्दु ने चुभने वाला व्यंग्य किया है जो फलों के नाम को आधार बनाकर तत्कालीन भारतीय समाज की कमजोरी और पतन के कारण को इंगित करता है। मुगल अपना मेवा भी टके सेर बेच रहा है। सबसे तीखा, आक्रामक और अंग्रेजी राजतन्त्र की पोल खोलने वाला व्यंग्य पाचक वाले (चूरन वाले) का है–

हिन्दू चूरन इसका नाम। विलायत पूरन इसका काम।

चूरन जब से हिन्द में आया। इसका धन बल सभी घटाया।

चूरन अमले सब जो खावे। दूनी रिशवत तुरंत पचावै।

चूरन पुलिस वाले खाते। सब कानून हजम कर जाते।

चूरन का भाव भी टके सेर है। मछली भी टके सेर बिक रही है। आटा, चावल और चीनी सभी का दाम टके सेर है। जात वाला (ब्राहमण) अपनी जात को टके सेर बेच रहा है। टके में ब्राहमण को धोबी और धोबी को ब्राहमण टके में झूठ को सच, ब्राहमण को मुसलमान और क्रिस्तान (ईसाई) बनाने को कहता है। टके में धर्म, प्रतिष्ठा बेचने, झूठी गवाही देने, पाप को पुण्य बताने, कुल, मर्यादा, वेष, धर्म सब टके सेर में बिक रहे हैं। सारे पदार्थ व्यक्तित्व, समाज का हर वर्ग, मूल्य, व्यवस्थाएं सब एक भाव बिक रहे हैं। भारतेन्दु ने लालची और विवेक शूनय समाज, गिरते मानवीय मूलय और बुद्धिहीन शासक वर्ग का चित्रण हास परिहास के रंग में सुन्दर और प्रभावी ढ़ंग से किया है जो उनकी योग्यता, क्षमता और दूर दर्शिता का प्रमाण है। महन्त का शिष्य इस नगर में ही रहने का आग्रह करता है। जबकि महन्त अन्धेर नगरी में एक क्षण भी रुकने को तैयार नही होता। महन्त कहता है कि–

सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास,

ऐसे देस कुदेस में, कवहुँ न कीजे वास,

बसिये ऐसे देस नहिं, कनक वृष्टि जो होय

रहिये तो दुख पाइये, प्रान दीजिए रोय।

चेला गोबरधन दास अंधेर नगरी में ही रुक जाता है। महन्त उसे संकट में स्मरण करने का आदेश दे कर दूसरे चेले नारायण दास के साथ अन्यत्र चले जाते हैं।

नाटक के चौथे अंक में राज सभा का दृश्य है। भारतेन्दु ने हास परिहास के साथ ही राजा के निकम्मेपन, आलस, भोग विलास और उसकी बुद्धिहीनता का चित्रण किया है। जो पान खाने की आवाज को सुपनखा का आना समझकर भागने लगता है।राजा का मन्त्री इसका दोष तमोली पर लगाता है और बुद्धि विवेकहीन राजा तमोली को दो सौ कोड़े लगाने का हुक्म देता है। दूसरे दृश्य में फरियादी का आगमन होता है जो बनिये की दीवार गिरने से अपनी बकरी के मरने पर न्याय माँगता हैं राजा पहले दीवार को पकड़ लाने का हुक्म देता है। भारतेन्दु राजा की

अज्ञानता और न्याय के प्रति लापरवाही को तीखा व्यंग्य बना देते हैं जिससे नाटक देखने या पढ़ने वाला बरबस ही हँसने लगता है। राज फिर कल्लू बनिये को उसके स्वयं को निरपराध बताने और कारीगर पर कमजोर दीवार बनाने का इल्ज़ाम लगाने पर कारीगर से चूने वाले पर फिर भिश्ती , कसाई, गड़रिये ओर अन्त में शहर कोतवाल पर आरोप लगाता है। जो न्याय प्रक्रिया के खोखले पन पर कटाक्ष है। राजा शहर कोतवाल को फाँसी पर लटकाने का दण्ड देता है। पाँचवे अंक में अराजकता और अन्याय पर व्यंग्य हैं राजा के सिपाही महन्त के चेले को पकड़ लेते हैं क्योंकि उसकी गर्दन मोटी है और फाँसी का फँदा कोतवाल के गले से बड़ा है। औचित्य पर इससे प्रखर व्यंग्य और क्या हो सकता हैं। चेले की करुण पुकार पर महन्त का आगमन होता है और महन्त अपने चेले गोबरधन दास को एक युक्ति बताते हैं ओर गुरू शिष्य दोनों फाँसी पर चढ़ने की ज़िद करते हैं। राजा के पूछने पर महन्त का यह संवाद कि आज मरने वाला सीधा स्वर्ग जायेगा पर सभी फाँसी पर चढ़ने को अपने को प्रस्तुत करते हैं। भारतेन्दु ने अच्छे बुरे सारे कर्मों के लिए राजा मन्त्री और सारे लोगों के आग्रह को स्वार्थ लिप्तता को उजागर किया है। अन्त में राजा स्वयं फाँसी के तख्ते पर चढ़ जाता है और स्वर्ग जाने की लालच में फाँसी लगा लेता है। अंधेर नगरी नाटक पर श्री सत्य प्रकाश मिश्र का यह कथन कितना प्रासांगिक हैं। ''यह नाटक इस अर्थ से समकालीन नाटक है कि यह किसी भी समय के अनाचार, भ्रष्टाचार, विवेक षून्यता और मनमाने पन पर रोशनी डालता है। इस प्रहसन में व्यंग्य के माध्यम से जो कुछ भी कहा गया है, उतना ही अधिक कहने की गुंजाइश भी है। रंगकर्मी और कुशल निर्देशक इस नाटक में बहुत कुछ समावेश करने की क्षमता का इस्तेमाल करके अपने समय की समस्याओं को रेखांकित करते हुए उसका उत्तर खोज सकते हैं।''

भारतेन्दु जी आधुनिक हिन्दी नाटक के जनक कहे जाते हैं। ऐसी बात नहीं है कि भारतेन्दु जी से पूर्व हिन्दी में नाटक नहीं लिखे गये थे। ब्रज भाषा में लिखे काव्य–नाटक, हिन्दी के नाटक ही हैं। किन्तु हिन्दी नाटकों को नयी प्रेरणा नहीं शैली और नई भाषा–खड़ी बोली देने वाले भारतेन्दु जी ही थे। नाटक जगत में भारतेन्दु जी का स्थान सदा ही स्मरणीय रहेगा। ब्रजभाषा के काव्य नाटक जन नाट्य शैली पर रचे गये थे।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने हरिश्चन्द्र की जन्मशती के अवसर पर अपनी पूर्व योजना के अनुसार उनके नाटकों का संग्रह भारतेन्दु ग्रन्थावली के रूप में निकाला है। सभा ने अपने इस ग्रन्थ में यह भी कहा है कि ''यह गोलोक वासी भारत भूषण श्री हरिश्चन्द्र के समस्त नाटकों का संग्रह है।'' सम्पादक बाबू ब्रजरत्न दास ने इन 17 नाटकों से पांच को संस्कृत से एक को बंगला से तथा एक को अंग्रेजी से अनुवादित बताया है। बाकी 10 नाटकों को मौलिक कहा गया है। इस ग्रन्थावली में प्रकाशित नाटक है – 1. विद्यासुन्दर 2. रत्नावली, 3. पाखण्ड विडम्बन, 4. वैदिकी हिंसा हिसां न भवति 5. धनंजय विजय 6. मुद्राराक्षस 7. सत्य हरिश्यचन्द्र, 8. प्रेम योगिनी, 9 विषस्य विषमौषधम् 10. कर्पूर मंजीर 11. चन्द्रावती 12. भारत दुर्दश 13. भारत जननी 14. नील देवी, 15. दुर्लभ बन्धु 16. अंधेर नगरी और 17. सती प्रताप।

भूमण्डलीकरण की अवधारणा का चिल्ल–पों, आर्थिक–उदारीकरण का मकड़जाल, तकनीकी का तूफान, विज्ञापन का पल–पल बदलता रूप, विश्व बैंक का लोन देने का तजुर्बा, उपयोग करो और फेंको की संस्कृति, वस्तु खरीदते ही पुरानी हो जाने की मानसिकता, अपरिमित चाह, सब कुछ पा लेने की लालसा या 'पर्चेजिंग पावर' का प्रदर्शन, आधुनिकता या उत्तरआधुनिकता के नाम पर मूल्यों का क्षरण।

संवेदना या रिश्तों का विकाऊपन, तूँ नहीं तो मेरा कोई और हो जायेगा की अवधारणा, पश्चिमी देशों का दुनिया को आर्थिक उपनिवेश या 'डस्टबिन' समझने की श्रृगांल वृत्ति। यह सब मिलकर एक नया रूप धारण करते हैं जिसे हम **'बाजारवाद'** कहते हैं, जो **जैनेन्द्रकुमार** के शब्दों में चिल्ला–चिल्ला कर कह रहा है – ''आओ मुझे लूटो और लूटो। सब भूल जाओ, मुझे देखो। मेरा रूप और किसके लिए है? मैं तुम्हारे लिए हूँ। नहीं कुछ चाहते हो, तो भी देखने में क्या हरज है? अजी आओ भी। इस आमंत्रण मे ंयह खूबी है कि आग्रह नहीं है आग्रह तिरस्कार जगाता है। लेकिन ऊँचे बाजार का आमंत्रण मूक होता है और उससे चाह जगती है। चाह मतलब अभाव।''[4]

'बाजार' आज हमारी सभ्यता है, संस्कृति है जो बाजार के अनुसार नहीं चलता वह **'आउट डेटेड'** है। पुराना है , रूढ़ि है। बाजार को जानना महत्वपूर्ण नहीं है, बाजार में बने रहना महत्वपूर्ण है क्योंकि वह पहचान का जरिया है। ''आज बाजार हमारे घर के भीतर, उसके चप्पे–चप्पे में आ गया है, हमारे जेहन और वजूद में विद्यमान है। बाजारू होना या कहलाना आज गाली नहीं है, हमारे नए मध्यवर्ग की आन, बान, शान और पहचान है।''[5] साहित्य में 'बाजारवाद' की अवधारणा नई नहीं है, इसके मकड़जाल से महाकवि कबीर एवं सूर ने पहले ही आगाहकर दिया था।

वरिष्ठ आलोचक **शंभुनाथ** के शब्दों में कहें तो – '' क्या रक्षणीय है – क्या त्याज्य, क्या सुरूचि है–क्या कुरूचि और बाजार में क्या खोकर क्या हासिल हो रहा है, इन सबका विवेक अंग्रेजी राज के जिन शिक्षित बुद्धिजीवियों में न था, उनका सांकेतिक ढंग से भारतेन्दु माखौल उड़ाते है। हर उपनिवेशवाद अपना बाजारवाद और इसका सम्मोहन लेकर आता है। इस सम्मोहन में ज्यादा फँसे थे गुणी जन, अर्थात शिक्षित बुद्धिजीवी। यही वजह है कि वे कपूर और कपास में फर्क नहीं कर पा रहे थे, उपनिवेशवाद से प्रभेद स्थापित करने की जगह उसमें लगातार अपने को विसर्जित किए जा रहे थे।''[6]

इस सम्मोहन को आज हवा दे रहा है 'विज्ञापन'। विज्ञापन और बाजार का अभिन्न सम्बन्ध है, जिस तरह से आज विज्ञापन के माध्यम से बाजार हमारे जीवन में बड़ी सरलता से प्रवेश कर जाता है उसी तरह से 'अन्धेर नगरी' में प्रवेश करते ही गोबरधनदास के ऊपर विज्ञापनीबाजार का हमला होता है यथा –

''कबाब गरमागरम मसालेदार–चौरासी मसाला बहत्तर आँच का–कबाब गरमागरम मसालेदार–खाय सो होंठ चाटै, न खाय सो जीभ काटै।''[7] और आज का विज्ञापन–दूध सी सफेदी/ अब और भी सफेदी/और भी झागदार। लेकिन इस विज्ञापन का सच क्या है? हम सभी को पता है। युवा कवि **मृत्युंजय प्रभाकर** के शब्दों में कहें तो – '' विज्ञापनों में हर चीज/ पहले से अच्छी और बेहतर होती है/ कभी–कभी सोचता हूँ/कितना अच्छा होता/ अगर यह दुनिया भी एक विज्ञापन होती।''[8]

बाजारवाद को पल्लवित पुष्पित करने के पीछे मनुष्य की स्वाद–संस्कृति भी है। मनुष्य कम समय में सब कुछ खा लेना चाहता है, हर व्यक्ति 'गोबरधनदास' बना हुआ है। लोगों के पेट ऐसे बढ़ रहे हैं जैसे मंदिर के 'गेट' हो। महन्त जी गोबरधनदास से कहते हैं– '' ऐसी नगरी में रहना उचित नहीं हैं, जहाँ टके सेर भाजी और टके ही सेर खाजा हो '' लेकिन गोबरधनदास गुरू की बात को नकारकर बाजारवाद की जहरीली स्वाद–संस्कृति की मृगतृष्णा में फंस ही जाता है और घोषणा कर देता है – '' मैं तो इस नगरी को छोड़कर नहीं जाऊँगा'' ''मैं तो यही कहता हूँ कि आप भी यही रहिए।'' **शंभुनाथ लिखते हैं** –''सभ्यता की यात्रा आग में भुना मांस खाकर

स्वाद–चेतना से शुरू हुई थी और अपने शिखर पर वह फिर स्वाद–संस्कृति के ही इर्दगिर्द है।''[9]

भारतेन्दु को 'बाजारवाद' की गहरी समझ थी। उनका 'अन्धेर नगरी' इसका जीवन्त दस्तावेज हैं। बाजार के बाजारूपन का क्या चित्रण किया है भारतेन्दु ने! ''जात लें जात, टके सेर जात। एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते हैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जाँय और धोबी को ब्राम्हण कर दें, टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था दें। टके के वास्ते झूठ को सच करें। टके के वास्ते ब्राम्हण से मुसलमान, टके के वास्ते हिन्दू से क्रिस्तान। टके के वास्ते धर्म और प्रतिष्ठा दोनों बेचें, टके के वास्ते झूठी गवाही दें। टके के वास्ते पाप को पुण्य माने, टके के वास्ते नीच को भी पितामह बनावे। वेद धर्म कुल–मरजादा सचाई– लड़ाई सब टके सेर। ''[10] समकालीन बाजारवाद का सच भी यही है 'बाप बड़ा न भइया सबसे बड़ा रूपया' या कहिए आज 'रूपया खुदा भी है और खुदा से बढ़कर भी'।

'अन्धेर नगरी' के माध्यम से भारतेन्दु ने बाजारवाद के उस छद्म का भी उल्लेख किया है जिसमें गुण की नहीं रूप की कीमत होती है –

''सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास।

ऐसे देस कुदेस में, कबहुँ न कीजै बास।।''[11] 'बास' करने से मना करते हैं साथ ही यह भी बताते हैं कि यह ऐसा भस्मासुर है जो अपने आका को भी बख्सने वाला नहीं है। चौपट्ट राजा यदि किसी गलत–फहमी में जी रहा हो कि गोबरधनदास ही–फाँसी पर चढ़ेगा तो गलत है क्योंकि गोबरधनदास को बचाने के लिए कोई न कोई महन्त आ भी सकता है लेकिन 'राजा' को कौन बचायेगा? दूसरों को बाजार के गिरफ्त में भेजने वाले राष्ट्र स्वतः एक न एक दिन इसके गिरफ्त में आ ही जायेंगे क्योंकि –

''जहाँ न धर्म न बुद्धि नहिं नीति न सुजन समाज।

ते ऐसहि आपुहि नसैं जैसे चौपट राज।।''[12]

गिरीश रस्तोगी का कथन है – ''अन्धेर नगरी' अन्ध –व्यवस्था का प्रतीक है। चौपट राजा विवेकहीनता और न्याय दृष्टि के न होने का मूर्त स्वरूप है। उसका न्याय भी अन्धता का प्रमाण है क्योंकि बकरी की मृत्यु का दण्ड देने के लिए गोवर्धन पकड़ लिया गया, अर्थात् कोई भी दण्डित हो सकता है। अविवेकी, प्रमादी, मूल्यहीन राजा की परिणति तो भारतेन्दु ने दिखायी ही है लेकिन साथ ही उन्होंने गोवर्धन के द्वारा मनुष्य की लोभवृत्ति पर भी व्यंग्य किया है। लोभवृत्ति ही मनुष्य को 'अन्धेर नगरी की अन्धव्यवस्था, अमानवीयता में फँसाती है। अंग्रेजो की न्याय–दृष्टि और प्रणाली में भी शोषक–शोषित, अपराधी निरपराधी में कोई अन्तर नहीं था, आज भी हमारी न्याय–प्रणाली की यही स्थिति है। हमारी समकालीन शासन व्यवस्था पर, शोषकवृत्ति पर तो, 'अन्धेर नगरी' व्यंग्य ही है पर यह अन्धेर नगरी विश्व के किसी भी कोने में हो सकती है।''[13] गिरीश रस्तोगी ने अन्धेर नगरी के जिन तत्वों 'लोभ और भोग' की ओर संकेत किया है। यही बाजारबाद के मूल में है। हम कह सकते हैं कि – '' बाजारवाद के विरोधी भी/ उतने ही बाजारू हैं/ जितने बाजार के समर्थक ''[14] जब बाजार से बचा नहीं जा सकता तो फिर निदान क्या है? निदान है – ' बाजार को सार्थकता प्रदान करना'। **जैनेन्द्रकुमार** के शब्दों में कहें तो – ''बाजार को सार्थकता भी वही मनुष्य देता है जो जानता है कि वह क्या चाहता है। और जो नहीं जानते कि वे क्या चाहते हैं, अपनी 'पर्चेजिग पावर' के गर्व में अपने पैसे से केवल एक विनाशक शक्ति–शैतानी शक्ति, व्यंग्य की शक्ति ही बाजार को देते हैं। न तो वे बाजार से लाभ उठा सकते हैं, न उस बाजार को सच्चा लाभ दे सकते है। वे लोग बाजार का बाजारूपन बढ़ाते हैं। जिसका मतलब है कि कपट बढ़ाते हैं। कपट

की बढ़ती का अर्थ परस्पर में सद्भाव की घटी।''[15]

'परस्पर में सद्भाव की घटी' की जो बात जैनेन्द्र कुमार ने बाद में की उसे भारतेन्दु 'अन्धेर नगरी' में पहले ही कह चुके थे। गोबरधनदास जैसे ही 'अन्धेर नगरी' के बाजार में प्रवेश करता है अपने गुरू 'महन्त' एवं गुरूभाई नारायणदास की बात मानने से इन्कार कर देता हैं अतः स्पष्ट हैं कि भारतेन्दु को 'बाजारवाद' की माया का भान था। फिलहाल मार्क्सवादी आलोचक **डॉ. शिवकुमार मिश्र** की बात से अपनी बात समाप्त कर रहा हूँ – '' इस बाजार और बाजार –तंत्र ने बहुत कुछ हमारे जीवन का बहुमूल्य बहुत कुछ लीला और पचाया है और बचे हुए को लीलने और पचाने पर आमादा है। हमारे जीवन मूल्य, स्मृतियाँ, परंपराएं, संस्कृति, भाषा, अस्मिता–विरासत का बहुत कुछ समा गया है उसके उदर में। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ, बड़े व्यापारी–अपनी 'ठगौरी' लिए लुभा रहे हैं हमारे समाज के 35 करोड़ आबादी वाले इस मध्यवर्ग को और वह बेसुध होकर आंखे बंद करके धँस गया है बाजार के माया लोक में बिना यह जाने–सोचे कि उसका अंधी–अँधेरी सुरंग से वह कभी बाहर भी निकल पाएगा या नहीं। बहरहाल बाजार की माया अभी तो उसे इस कदर मोहे हुए है कि उसे कुछ भी सोचने की फुरसत नहीं।''[16]

ब्रिटिश साम्राज्य के राजनैतिक क्षेत्र में घूंसखोरी का बाजार खूब गर्म था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने आम घूंसखोरी का खुलकर विरोध किया। उन्होंने अपने नाटक ष्वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' में न्यायालयों की घूंसखोरी का नग्न चित्र प्रस्तुत किया गया है। यमराज के दरबार में श्रीयुत गृहराज के मंत्री चित्रगुप्त के द्वारा संचित की हुई धनराशि को यमराज के चरण कमलों में अर्पित करता हुआ चित्रगुप्त स्पष्ट करता है–

श्अरे दुष्ट यह भी क्या मृत्युलोक की कचहरी है कि तू हमें घूंस देता है और क्या हम लोग वहॉ के न्यायकर्ताओं की भॉति जंगल से पकड़कर लाये हैं कि हम दुष्टों के व्यवहार नहीं जानते। जहॉ से तू आया है और जो गति तेरी है सभी घूस लेने वालों की होगी–।[17]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने व्यंग्य के माध्यम से राजनैतिक चेतना का मंत्र न केवल सरकार के कानों में ही फूंका अपितु पद–दलित समाज को भी सजग किया।

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत की धार्मिक स्थिति पतन के कगार पर खड़ी थी। डॉ0 मेन्हदीरत्ता के शब्दों में–

श्सर्वत्र अज्ञान अविद्या एवं नैतिक दुर्दशा का राज्य दुर्दशा का राज्य था।[18]

भारतेन्दु युगीन साहित्य में सांस्कृतिक अवमूल्यन पर काफी चिन्ता व्यक्त की गयी। अग्रेजी प्रभाव की अभिवृद्धि के कारण सांस्कृतिक अवमूल्यन भारत को पतन के गर्त में ले जा रहा थी। सारा देश सांस्कृतिक दृष्टि से निरीह विपन्न, दरिद्र होता जा रहा था। शिक्षित समाज भी पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित होकर अंधानुकरण में लगा हुआ था। पाश्चात्य के प्रभाव अनैतिकता को बढ़ा रहे थे। अग्रेजी भाषा और पद्धति का प्रचार होने से गुलामों की संख्या में अभिवृद्धि हो रही थी। भारतेन्दु जी को पाश्चात्य गुलामी सह्य नहीं हुई। इसलिए भारतीय संस्कृति की जमकर पहचान कराई। 'निजभाषा उन्नति अहै, सब उन्नति के मूल' से भाषा का गौरव गान किया। उर्दू और अग्रेजी के बोल बाले के युग में भारतेन्दु जी को मातृभाषा को माध्यम बनाने के लिए पर्याप्त संघर्ष करना पड़ा। उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से पाश्चात्य सभ्यता, रीतिरिवाज, वेशभूषा, रहन–सहन का अन्धानुकरण करने वालों को फटकारा। अग्रेजी के अधकचरे ज्ञान और पश्चिमी सभ्यता के रंग में रंग जाने वाले भारतीयों की खूब खबर ली। चूरन का मौलिक व्यंग्य किया। टके के वास्ते हिन्दू से क्रिस्तान होने के गगनभेदी उद्घोष से भारतवासियों को जगाया–''टके के

वास्ते धोबी हो जाये और धोबी को ब्राह्मण कर दे। टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था दे। टके के वास्ते झूठ को सच करें। टके के वास्ते ब्राह्मण से मुसलमान, टके के वास्ते हिन्दू से क्रिस्तान।''[19] धार्मिक अन्धविश्वास, रूढ़ियाँ, परम्पराएँ किसी धर्म को विषमताओं की ओर ले जाती है।

धर्म के नाम पर जातीय विश्वास और आस्था दिशा भ्रमित हो जाते हैं जो अनेक समस्याओं को जन्म देती हैं। भारतेन्दु ने भी धर्म के नाम पर फैले मतमत्तान्तरो का विरोध किया। आडम्बरों और पाखण्डों को एक भमजाल सिद्ध किया। सर्वत्र फैले हुए अज्ञान, अविद्या और नैतिक अवमूल्यन का विरोध किया। दासता का प्रभाव धर्म पर भी था। अन्धविश्वास एवं अंधभक्ति कीजड़े बड़ी गहरी हो चुकी थीं। सोचने समझने की सामर्थ्य अग्रेजी दासता के परवान चढ़ चुकी थी। इसलिए हाँ में हाँ मिलाने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही थी। 'अंधेर नगरी' का अन्तिम दृश्य इसका सबसे सटीक उदाहरण है जहाँ राजा, सिपाही, गुरू मंत्री, कोतवाल सभी फाँसी के फन्दे पर बिना विचारे ही चढ़ना चाहते है। भारतेन्दु जी का सन्देश आँख खोलने के लिए है–

''जहाँ धर्म न बुद्धि नहिं नीति न सुजन समाज।

ते ऐसेहिं आपुहि नसैं, जैसे चौपट राजा।''[20]

अन्धेर नगरी का रचना काल सन् 1881ई0 है। इसक कथा जनता में अनेक रूपों में प्रचलित थी। भारतेन्दु ने इस कथा को नाटकीय रूप में बिहार प्रान्त के किसी जमींदार के अन्याय को लक्ष्य करके प्रदान किया था। इसकी कथा से तत्कालीन राजाओं की निरंकुश अंधेरगर्दी उनकी अराजकता और मूढ़ता पर व्यंग करना ही इस नाटक का उद्देश्य है। भारतेन्दु जी दुखी थे हिन्दुओं की दुर्दशा से। ये हिन्दू अपने लाभ–हानि को न सोचकर अंग्रेजों की स्वार्थ पूर्ति में असहायक बने थे। प्रस्तुत नाटक के माध्यम से भारेन्दु ने भारतीयों को आगाह किया कि वे अपने समाज की संस्कृति, सभ्यता को पवित्र बनाये रखें। सम्पूर्ण नाटक में समाज में व्याप्त मूर्खता, अधर्म, अन्याय का वर्णन है।

'अंधेर नगरी' भारतेन्दु का चर्चित मंचित जनप्रिय नाटक है। भारतेन्दु की अंधेर नगरी में विवेकहीन विदेषी शासन में जीवन यापन कर रहे उस समाज को चित्रित किया गया है जहाँ सारे जीवन–मूल्य समाप्त हो गये हैं जहाँ कपूर और कपास में भेद नहीं है, कोयल और कौए में भेद नहीं है, पण्डित और मूर्ख में भेद नहीं है, नीच–ऊँच में भेद नहीं है, भँडुए और पण्डित एक जैसे हैं, वेश्या और पत्नी एक समान हैं, गाय और बकरी को एक ही समझा जाता है। इस नगरी में लोग भीतर से बहुत मलिन हैं, पर बाहर इनका रंग बहुत चमकदार हैं। जो बाहर से सभ्य और भीतर से छली हैं, वे ही राजसभा में बलशाली हैं। सच बोलने वाले जूते खाते हैं, झूठ बोलने वाले तरह–तरह से सम्मानित होते हैं। यहाँ गौ, द्विज और वेद का आदर नहीं होता, लगता है, जैसे राजा कोई विधर्मी हो, धर्म–अधर्म का भेद मिट गया है, यहाँ छलियों के आगे लाख कहने पर किसी की बात नहीं चलती। नाटक का पात्र गोवर्धनदास इस सच्चाई को पांचवे दृश्य के आरम्भ में गाते हुए सबको रूबरू कराते हुए कहता है –

अंधेर नगरी अनबूझ राजा। टका सेर भाजी टका सेर खाजा।।

नीच ऊँच सब एकहि ऐसे। जैसे भडुए पंडित तैसे।।

कुल मरजाद न मान बड़ाई। सबै एक से लोग लुगाई।।

जात पांत पूछे नहि कोई। हरि को भजे सो हरि को होई।।

वेष्या जोरू एक समाना। बकरी गऊ एक करि जाना।।

सांचे मारे मारे डोलैं। छली दुष्ट सिर चढ़ि चढ़ि बोलैं।।

प्रगट सभ्य अन्तर छलधारी। सोइ राजसभा बलभारी।।

सांच कहैं ते पनही खावैं। झूठे बहुविधि पदवी पावैं।।

छलियन के एका के आगे। लाख कहौ एकहु नहिं लागे।।

भीतर होइ मलिन की कारो। चहिये बाहर रंग चटकारो।।

धर्म अधर्म एक दरसाई। राजा करै सो न्याव सदाई।।

भीतर स्वाहा बाहर सादे। राज करहिं अमले अरू प्यादे।।

अन्धाधुन्ध मच्यौ सब देसा। मानहुं राजा रहत विदेसा।।

गो द्विज श्रुति आदर नहीं होई। मानहुं नृपति विधर्म्मी कोई।।

ऊँच नीच सब एकहि सारा। मानहुं ब्रह्म ज्ञान विस्तारा।।

अंधेर नगरी अनबूझ राजा। टका सेर भाजी टका सेर खाजा।।[21]

भारतेन्दु ने इस 'अंधेर नगरी' का जो खाका खींचा है उसे देखकर लगता है वर्तमान भारत में भी सरकार, न्याय, सभी महकमे के सरकारी कर्मचारी विषेष तौर पर पुलिस, महाजन आदि की पूरी स्थिति तो आज भी वही है, जिसे भारत भूषण हरिष्चन्द्र ने लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व 'अंधेरी नगरी' में चित्रित किया है। सफेदपोष व्यक्ति किस प्रकार आम आदमी का शोषण करते हैं। आज यह बात किसी से छुपी नहीं है। राजकीय अस्तव्यस्तता का हरिष्चन्द्रजी ने बड़ा ही जीवंत चित्र खींचा है। इन्होंने 'अंधेर नगरी' में अपने परिवेश, समाज और अपने समय में उत्पन्न सभी समस्याओं को अपनी संचेतन दृष्टि से सूक्ष्म रूप में पकड़ा है। शासन तंत्र की भ्रष्टता, स्वार्थपरता, अवसरवादिता, कृत्रिमता, मिथ्यादम्भ, ढोंग आदि के कारण आज आम आदमी वास्तव में आदमी नहीं रहा है। इनका यह नाटक संघर्षमयी जीवन की अभिव्यक्ति है। जो आज की परिस्थितियों का सीधे साक्षात्कार कराती है। आज हम संकट के दौर से गुजर रहे हैं। संकट चौतरफा है। भारतीय मूल्य ध्वस्त हो रहे हैं। नवयुवक दिग्भ्रमित हो रहे हैं। अपराधीकरण के कारण राजनीति नीति से हाथ धो बैठी है। लोकमानस की संवेदनाएं सिकुड़ती जा रही हैं। इस नगरी में हर चीज बिकाऊ है। कवि प्रभाकर माचवे ने भी लिखा है :–

'यहाँ अमूल्य वस्तुएँ भी बेची जाती हैं:/मसलन सतीत्व, प्रमाणिकता, वोटर–संख्या,/पण्य वस्तु लावण्य बना है, नगण्य है क्या?/खुदा चढ़ा नीलाम, आत्मा की फोटू खींची जाती है।'[22] चेतना की दृष्टि से अंधेर नगरी आज का ही नाटक है इसमें कोई शक नहीं है। प्रसिद्ध निर्देषक डॉ. सत्यव्रत ने 'अंधेर नगरी' को आज के एक समसामयिक नाटक के रूप में देखा, और इसके पात्रों में आज के चरित्रों को स्थित अनुभव किया : 'बाबा, अर्थात् आज के शुभ्र वेषधारी विदेषों से नाता लगाये धनसम्पन्न योगी, चेला नारायणदास–गोवर्धनदास अर्थात् हमारी वह नयी पीढ़ी जिस पर हिप्पी–बीटनिक संस्कृति अनायास हावी हो रही है, राजा अर्थात् सत्ता के लिए या सत्ता पर बने रहने के लिए जितनी भी सिद्धांतहीनता बरती जा सकती है, और जितने भी न्यस्त स्वार्थों को प्रश्रय दिया जा सकता है, उनका प्रतिनिधि मंत्री अर्थात् उन सब विदेषी ताकतों का प्रतिनिधि जिनके इषारे पर सत्ता नाचती रहती है, फरियादी अर्थात् वह साधारण जन जो सदियों से न्याय माँग रहा है लेकिन उसे आज तक न्याय नहीं मिला, यद्यपि बड़े–बड़े वायदे हुए, बड़े परिवर्तन हुए, किन्तु शासकीय खानापूरी के अलावा उस साधारण जन के लिए

कुछ नहीं हुआ, और कल्लू बनिया, कारीगर चूनेवाला, भिष्ती, कसाई, गड़ेरिया और कोतवाल अर्थात् न्यस्त स्वार्थों का जमघट जिन्हें राजा और उनके शासन की चिन्ता नहीं, क्योंकि वे समर्थ हैं कि जब चाहें तब राजा को गद्दी से उतार दें। इस प्रकार मेरी कल्पना में यह नाटक समसामयिक हो गया।'[23] 'अंधेर नगरी' को रंगमंच में सामाजिक के रूप में देखने के पश्चात् डॉ. रघुवंश ने अपनी प्रतिक्रिया आज की प्रासंगिकता को लेकर ही दी है। उनका मानना है 'मैं रंगमंच पर दर्षकों की गैलरी में बैठ कर, उनके साथ उसका प्रदर्षन देखकर सामाजिकों के साथ अनुभव कर सका कि इस निर्देषन में भारतेन्दु का यह नाटक बिल्कुल नये रूप तथा सन्दर्भ को व्यंजित कर रहा है। हमारे आज के समाज में मूल्यहीनता को अच्छे–बुरे की कोटियों में न ग्रहण किया जा सकता है, न अभिव्यक्त ही, और हमारे सामने सत्यव्रत सिन्हा जिस अंधेर नगरी की प्रस्तुति कर रहे हैं, वह युग–जीवन की सारी मूल्यों की परिस्थिति को अच्छे–बुरे की कोटियों में व्यंजित नहीं करती, वरन् उसकी मूल्यहीनता की असंगतियों–विसंगतियों को अभिव्यक्त कर रही है।'[24]

इस प्रकार हम देखते हैं अंधेर नगरी को दर्षक रूप में देखने के पश्चात् वर्तमान संदर्भ में इसके अर्थ अवश्य प्रभावित होते हैं और वर्तमान प्रासंगिकता को ही अभिव्यक्त करते हैं। डॉ. कुँवर चन्द्रप्रकाष सिंह का मानना है – 'विवेकहीन समाज और शासन की व्यापक वस्तुस्थिति पर प्रकाष डाला गया है।[25]

भारतेन्दु ने जिस भ्रष्टाचार का यथार्थ वर्णन किया है वह आज भी उतना ही प्रासंगिक है। हर जगह भ्रष्टाचार फैला हुआ है, पैसे के लिए व्यक्ति अपने नैतिक मूल्य को खो चुका है वह किसी भी सीमा तक गिर सकता है। पैसे के लिए कर्मचारी रिश्वत लेने से नहीं कतराते हरिश्चन्द्र जी ने जिस 'अंधेर नगरी' का चित्र खींचा है वह कुछ इसी प्रकार की है – 'अन्धाधुंध सारा मच्यौ सब देसा, मानहुँ राजा रहत विदेसा।' नाटककार देश में निवास करने वालों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं –

चूरन साहेब लोग जो खाता। सारा हिन्द हजम कर जाता।।

चना हाकिम सब जो खाते। सब पर दूना टिकस लगाते।।

चूरन अमले सब जो खावैं। दूनी रूषवत तुरत पचावैं।।

चूरन सभी महाजन खाते। जिससे जमा हजम कर जाते।।
चूरन पुलिसवाले खाते। सब कानून हजम कर जाते।।

कुजड़िनः ले हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बैर।।

मुगलः आमारा ऐसा मुल्क अंगरेज का भी दांत कट्टा ओ गया
हिन्दोस्तान का आदमी लक लक, हमारे यहाँ का आदमी बुंबक बुंबक।

अर्थात् पैसे पर सब कुछ बिकता है। एक टका दो, हम अपनी जात बेचते हैं। टके के वास्ते ब्राह्मण हो जायं और धोबी को ब्राह्मण कर दें। टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था दें। टके के वास्ते झूठ को सच करें। टके के वास्ते ब्राह्मण से मुसलमान, टके के वास्ते हिन्दू से क्रिस्तान। टके के वास्ते धर्म और प्रतिष्ठा दोनों बेचें टके के वास्ते झूठी गवाही दें। टके के वास्ते पाप को पुण्य मानें, टके के वास्ते नीच को भी पितामह बनावैं। वेद धर्म कुल मरजादा सचाई बड़ाई सब टकै सेर। यह जीवन का सत्य भी है कि समाज में धन को महत्त्वपूर्ण स्थान मिलता जा रहा है। 'नीति–शतक' में भी कुछ इसी प्रकार की चर्चा की गई है –

''यस्याति वित्तं स नरः/ कुलीनः गुणज्ञः सर्वज्ञः/ सः एव वक्ता सः चदर्षनीय/ सर्वेगुणाः काण्चनम् आश्रयन्तिः'' 'अंधेर नगरी' के घासीराम और पाचकचूरन बेचने के बहाने हाकिमों के द्विगुणित कर लगाने, अमलों के घूस लेने, महाजनों के अत्यधिक लाभ उठाने, अंग्रेजों द्वारा सारे भारत को उदरस्थ कर लिये जाने, पुलिस के अनियमित कार्य करने की जो चर्चा करते हैं, उससे उस समय के अधिकारी और धनी वर्ग की मनोवृति परिलक्षित होती है।[26] यह नाटक जितना भारतेन्दु युग में उस समय की मनोवृत्ति को परिलक्षित करता है आज भी उतना ही समसामयिक है। डॉ. रामविलास शर्मा 'अंधेर नगरी' की प्रासंगिकता पर ही अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं–'अंधेर नगरी अंग्रेजी राज्य का ही दूसरा नाम है।' भारतेन्दु के समय की दृष्टि से तो वह अंग्रेजी राज्य का नाम है ही, वह हमारे अपने समय के शासकों के राज्य का भी नाम है। हमें कहना चाहिए कि दुनिया में जहाँ कहीं और किसी भी समय में सत्तालोलुप निरंकुष सत्ताधारियों की अंधव्यवस्था है, उसका नाम अंधेर नगरी है। भारतेन्दु ने उसमें अपने युग की ही चेतना नहीं, युग–युग की चेतना व्यक्त की है। इस छोटे–से नाटक में बहुत कुछ कहने की क्षमता है। इसकी संवेदना के आयाम अत्यन्त व्यापक हैं। भारतेन्दु ने सत्ता की आकांक्षा, सत्ता से चिपके रहने के लिये कोई भी बुरा काम करने की प्रवृत्ति, शोषण, अत्याचार तथा लोभ को देखा था। उन्होंने अपने नाटक में संदेश भी दिया है अधिक लोभ नहीं करना चाहिए क्योंकि लोभ ही पाप का कारण है। यह लोभ केवल आम जनता में ही नहीं अपितु सत्ता से चिपके हुए व्यक्तियों में भी है यह पहले भी था और आज भी है। 'अंधेर नगरी' में समाज में फैले हुए भ्रष्टाचार, लोगों के नैतिक पतन और अंधेर नगरी में हो रहे अनाचार का ही सशक्त चित्रण हुआ है। देश की दशा को चित्रित कर देशवासियों के मन में राष्ट्रीय चेतना को जगाना ही भारतेन्दु जी का परम उद्देष्य भी रहा है। लोकजीवन से जुड़ा हुआ नाटक है डॉ. दशरथ ओझा इस सम्बन्ध में कहते हैं – 'आज भी गाँवों में चना और चूरन इन्हीं गानों के साथ बेचे जाते हैं। सैकड़ों लोग उनके चतुर्दिक खड़े होकर इन गानों को सुनते और आनन्द उठाते हैं।'[27] चूरनवाला चूरन के बहाने से सरकार की कलई खोलने में हिचकिचाता भी नहीं है और कानून की पकड़ में भी नहीं आता –

चूरन अमल वेद का भारी। जिस को खाते कृष्णमुरारी।।

मेरा पाचक है पचलोना। जिसको खाता श्याम सलोना।।

चूरन बना मसालेदार। जिसमें खट्टे की बहार।।

मेरा चूरन जो कोई खाय। मुझ को छोड़ कहीं नहिं जाय।।

हिन्दू चूरन इस का नाम। विलायत पूरन इसका काम।।

चूरन जब से हिन्द में आया। इसका धन बल सभी घटाया।।

चूरन ऐसा हट्टा कट्टा। कीना दाँत सभी का खट्टा।।

चूरन चला डाल की मंडी। इस को खाएँगी सब रंडी।।

चूरन अमले सब जो खावैं। दूनी रूषवत तुरत पचावैं।।

चूरन नाटकवाले खाते। इस की नकल पचा कर लाते।।

चूरन सभी महाजन खाते। जिससे जमा हजम कर जाते।।

चूरन खावै एडिटर जात। जिन के पेट पचै नहिं बात।।

चूरन साहेब लोग जो खाता। सारा हिंद हजम कर जाता।।

चूरन पुलिसवाले खाते। सब कानून हजम कर जाते।।
ले चूरन का ढेर, बेचा टके सेर।।[28]

अंधेर नगरी की यह शब्दावली अपने समय की मुहर लगा देती है। हमारे वर्तमान सन्दर्भ में भी प्रासंगिक बनी हुई है। मुझे डॉ. हरिवंशराय बच्चन की पंक्तियाँ याद आ रही हैं जिसमें उन्होंने कहा था –'जग बदलेगा, किन्तु न जीवन'। किसी भी देष की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ समय के साथ–साथ बदल सकती हैं किन्तु मनुष्य का अन्तर्जीवन कभी नहीं बदलता है, 'प्रणय स्वप्न की चंचलता पर जो रोते हैं सिर धुन–धुन कर' वे बने रहेंगे। अंधेर नगरी में जीवन के शाश्वत प्रश्नों को नहीं उठाया गया है, और न शाश्वत राग–विरागों को चित्रित किया गया है – इसमें ऐसी स्थिति का चित्रण है जो सदा प्रत्यक्षतः परिलक्षित नहीं होने पर भी हर युग और हर देश में सदा बनी रहती है। यह स्थिति है भ्रष्टता की, लोगों के नैतिक पतन की, मनुष्य के अंधत्व की, उसकी अंधेर नगरी की।[29]

मनुष्य के भीतर–बाहर की विकृतियाँ हमेशा से रही हैं, परिवेश की विकृतियाँ मनुष्य की आन्तरिक विकृतियों का ही मूर्त रूप होती हैं, और ये युग विषेष तक सीमित नहीं हैं। इस दृष्टि से यह दुनिया एक शाष्वत अंधेर नगरी है। धर्मवीर भारती ने 'अंधा युग' में लिखा है – 'युद्धोपरान्त/यह अंधा युग अवतरित हुआ।/जिसमें स्थितियों, मनोवृत्तियों, आत्माएँ सब विकृत हैं।/' सत्य यह है कि अंधा युग रह–रह कर अवतरित नहीं होता, वह हमेशा बना रहता है।[30]

अंधेर नगरी का महत्त्व चेतना और शिल्प दोनों ही दृष्टि से आज चर्चा के विषय बने हुए हैं। डॉ. सत्यव्रत सिन्हा इसकी प्रासंगिकता पर विचार करते हुए कहते हैं कि'अनेक कालखण्ड पार कर यह प्रहसन अभी भी ताजा बना हुआ है। सत्य हरिश्चन्द्र और चन्द्रावली अपनी जगह पर है, किन्तु अंधेर नगरी बार–बार डगर भर लेता है।' युग पुरूष भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की अंधेर नगरी का महत्त्व सदैव बना रहेगा।

सन्दर्भ–ग्रंथ

1. अँधेर नगरी,पृ०सं०–534
2. समसामयिक नाटकों में वर्ग चेतना–डॉ० देवी किशन चौहान,पृ०सं०–79
3. भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग 1– ब्रजरत्न दास 2007, पृ0–489
4. आरोह'–भाग–02, एनसीईआरटी, प्रथम संस्करण 2007, पृष्ठ–87
5. मिश्र शिवकुमार–'भक्ति–आन्दोलन और भक्ति–काव्य', प्रथम लोक–भारती संस्करण,2010,इलाहाबाद
6. शंभुनाथ–'दुस्समय में साहित्य', वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002,पृष्ठ–50
7. डॉ. गिरीश रस्तोगी,–'भारतेन्दु और अन्धेर नगरी', अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद,संस्करण 1996, पृष्ठ–74
8. जनपथ–सम्पादक–अनन्त कुमार सिंह, मार्च 2010, पृष्ठ–141
9. .शंभुनाथ–'संस्कृति की उत्तरकथा', वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2000, (भूमिका से)
10. डॉ. गिरीश रस्तोगी–'भारतेन्दु और अन्धेर नगरी', अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 1996, पृष्ठ–76,78
11. डॉ. गिरीश रस्तोगी–'भारतेन्दु और अन्धेर नगरी', अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 1996, पृष्ठ–78

12. डॉ. गिरीश रस्तोगी–'भारतेन्दु और अन्धेर नगरी', अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 1996,पृष्ठ–87
13. .डॉ. गिरीश रस्तोगी–'भारतेन्दु और अन्धेर नगरी', अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 1996, पृष्ठ–28
14. डॉ. गिरीश रस्तोगी–'भारतेन्दु और अन्धेर नगरी', अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 1996, पृष्ठ–28
15. आरोह'–भाग–02, एनसीईआरटी, प्रथम संस्करण 2007,पृष्ठ–91
16. मिश्र शिवकुमार–'भक्ति आन्दोलन और भक्ति–काव्य', प्रथम लोक भारती,संस्करण,2010 इलाहाबाद, पृष्ठ–300
17. भारत दुर्दशा– डॉ0 सत्यवृत सिन्हा, पृ0–76
18. हिन्दी साहित्य में व्यंग्य– डॉ मेहन्दीरत्ता, पृ0–155
19. वही (अँधेर नगरी)–पृ०सं०–531
20. अँधेर नगरी,पृ०सं०–536
21. अंधेर नगरी–भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, दृश्य पांचवॉ (प्रारम्भिक गीत)
22. हंस–अक्टूबर 1943
23. .नटरंग–12 पृ. 38–39
24. छायानट–48, पृ. 9
25. हिन्दी नाट्य–साहित्य और रंगमंच की मीमांसा : डॉ. कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह पृ. 210
26. हिन्दी नाटक : डॉ. बच्चन सिंह (द्वितीय संस्करण) पृ. 33
27. हिन्दी नाटकः उद्‌भव और विकासः डॉ. दसरथ ओझा, तृतीय संस्करण, पृ. 181
28. अंधेर नगरी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र दूसरा दृश्य (पाचकवाला)
29. अंधेर नगरी संवेदना और शिल्प सिद्धनाथकुमार,पृ. 57
30. .अंधेर नगरी संवेदना और शिल्प सिद्धनाथकुमार ,पृ. 22

Copyright © 2017, Dr. Virendra Singh Yadav. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.